

## Chapter तेईस

### देवताओं को स्वर्गलोक की पुनर्प्राप्ति

इस अध्याय में बतलाया गया है कि बलि महाराज अपने पितामह प्रह्लाद महाराज सहित किस प्रकार सुतललोक गये और भगवान् ने किस तरह इन्द्र को स्वर्गलोक में प्रवेश करने की अनुमति दी।

महात्मा बलि महाराज ने अनुभव किया कि जीवन का सर्वोच्च लाभ भगवान् के चरणकमलों की पूर्ण शरण में रहकर भक्ति प्राप्त करना है। ऐसे निर्णय पर पहुँचकर उन्होंने ने प्रेमा-भक्ति से पूरित हृदय एवं अश्रुओं से पूरित नेत्रों से भगवान् को नमस्कार किया और फिर अपने पार्षदों सहित सुतललोक में प्रवेश किया। इस प्रकार भगवान् ने अदिति की इच्छा पूरी की और इन्द्र को पुनःस्थापित किया। जब प्रह्लाद महाराज ने सुना कि बलि को बन्धन से मुक्त कर दिया गया है, तो उन्होंने इस जगत में भगवान् की दिव्य लीलाओं का वर्णन किया। उन्होंने इस भौतिक जगत की सृष्टि करने, सब पर समदृष्टि रखने तथा भक्तों पर कल्पवृक्ष के समान अत्यन्त उदार होने के लिए भगवान् की प्रशंसा की। निस्सन्देह, उन्होंने यह भी कहा कि भगवान् न केवल अपने भक्तों पर वरन् असुरों पर भी दयालु रहते हैं। इस प्रकार उन्होंने भगवान् की असीम अहैतुकी कृपा का वर्णन किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् को सादर नमस्कार किया और फिर उनकी प्रदक्षिणा करके भगवान् के आदेशानुसार वे भी सुतललोक में प्रविष्ट हुए। तब भगवान् ने शुक्राचार्य को आदेश दिया कि वे बलि महाराज द्वारा यज्ञ सम्पन्न करते समय की गई त्रुटियों और कमियों का विवरण दें। शुक्राचार्य भी भगवान् का पवित्र नाम जपने से सकाम कर्म के बन्धन से मुक्त हो गये और उन्होंने बतलाया कि बद्धजीव किस तरह जप द्वारा अपने

दोषों को कम कर सकता है। तब उन्होंने बलि महाराज के यज्ञोत्सव को पूरा किया। समस्त महान् ऋषियों तथा मुनियों ने वामनदेव को इन्द्र का उपकार-कर्ता स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने इन्द्र को स्वर्गलोक वापस दिलवाया। उन्होंने भगवान् को ब्रह्माण्ड के सारे कार्यों का पालक स्वीकार किया। इन्द्र ने अपने साथियों सहित अत्यन्त प्रसन्न होकर वामनदेव को अपने समक्ष रखा और तब अपने विमान से स्वर्गलोक वापस गये। सारे देवताओं, सन्तों, पितरों, भूतों तथा सिद्धों ने बलि महाराज की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु के अलौकिक कार्यों को देखकर भगवान् की महिमा का पुनः-पुनः गान किया। इस अध्याय का अन्त इस कथन के साथ होता है कि बद्धजीव का सबसे शुभ कार्य है भगवान् विष्णु के महिमायुक्त कार्यों के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करना।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं

महानुभावोऽखिलसाधुसम्मतः ।

बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो

भक्त्युत्कलो गद्गदया गिराब्रवीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्तवन्तम्—भगवान् के आदेश पर; पुरुषम्—भगवान् को; पुरातनम्—सबसे अधिक पुरातन; महा-अनुभावः—बलि महाराज जो महात्मा थे; अखिल-साधु-सम्मतः—सभी सन्त पुरुषों द्वारा अनुमोदित; बद्ध-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; बाष्प-कल-आकुल-ईक्षणः—अश्रुपूरित नेत्रों से; भक्ति-उत्कलः—प्रेमा-भक्ति से पूरित; गद्गदया—भक्ति-भाव में अवरुद्ध होती; गिरा—वाणी से; अब्रवीत्—कहा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब परम पुरातन नित्य भगवान् ने सर्वत्रमान्य शुद्ध भक्त एवं महात्मा बलि महाराज से यह कहा तो बलि महाराज ने आँखों में आँसू भरकर, हाथ जोड़कर तथा भक्ति-भाव के कारण लड़खड़ाती वाणी से इस प्रकार कहा।

श्रीबलिरुवाच

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः

प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।

यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरै-

रलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; अहो—ओह; प्रणामाय—अपना सादर नमस्कार अर्पित करने के लिए; कृतः—मैंने किया; समुद्यमः—केवल एक प्रयास; प्रपन्न-भक्त-अर्थ-विधौ—शुद्ध भक्तों द्वारा माने जाने वाले विधि-विधानों में; समाहितः—समर्थ है; यत्—जो; लोक-पालैः—विभिन्न लोकों के प्रधानों द्वारा; त्वत्-अनुग्रहः—आपकी अहैतुकी कृपा;

अमरैः—देवताओं द्वारा; अलब्ध-पूर्वः—इसके पूर्व अप्राप्त; अपसदे—मुझ जैसे पतित व्यक्ति पर; असुरे—असुर वंश वाले; अर्पितः—अर्पित।

बलि महाराज ने कहा : आपको सादर नमस्कार करने के प्रयास में भी कैसा अद्भुत प्रभाव है! मैंने तो आपको अपना नमस्कार अर्पित करने का प्रयास ही किया था, किन्तु वह प्रयास शुद्ध भक्तों के प्रयासों के समान सफल सिद्ध हुआ। आपने मुझ पतित असुर पर जो अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की है, वह देवताओं या लोकपालों को भी कभी प्राप्त नहीं हुई।

तात्पर्य : जब वामनदेव बलि महाराज के समक्ष प्रकट हुए तो उन्होंने वामनदेव को तुरन्त सादर नमस्कार करना चाहा, किन्तु शुक्राचार्य एवं अन्य असुर संगियों की उपस्थिति के कारण वे वैसा न कर पाये। लेकिन भगवान् इतने दयालु हैं कि यद्यपि बलि महाराज वास्तव में नमस्कार न कर पाये और, केवल मन में ही वैसा करने का प्रयास किया, तथापि भगवान् ने उन पर इतनी कृपा दिखला दी जितनी की देवता भी कभी आशा नहीं कर सकते थे। जैसाकि *भगवद्गीता* (२.४०) में पुष्टि की गई है—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—इस पथ पर थोड़ी सी प्रगति से भी अत्यन्त घातक भय से मनुष्य की रक्षा हो सकती है। भगवान् *भावग्राही जनार्दन* कहलाते हैं क्योंकि वे भक्त के भाव का सार मात्र ग्रहण कर लेते हैं। यदि भक्त निष्ठापूर्वक शरणागत बनता है, तो प्रत्येक हृदय में स्थित परमात्मा-स्वरूप भगवान् इसे तुरन्त समझ जाते हैं। इस प्रकार भले ही कोई भक्त ऊपर से पूर्ण सेवा न करे, किन्तु यदि वह अन्तःकरण से निष्ठावान् एवं गम्भीर होता है, तो भगवान् उसकी सेवा का स्वागत करते हैं। इस तरह भगवान् *भावग्राही जनार्दन* कहलाते हैं क्योंकि वे मनुष्य की भक्तिमयी प्रवृत्ति के सार को ग्रहण करते हैं।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा हरिमानत्य ब्रह्माणं सभवं ततः ।  
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्त्वा—यह कहकर; हरिम्—हरि को; आनत्य—नमस्कार करके; ब्रह्माणम्—ब्रह्माजी को; स-भवम्—शिवजी के साथ; ततः—तत्पश्चात्; विवेश—प्रवेश किया; सुतलम्—सुतललोक में; प्रीतः—पूरी तरह प्रसन्न; बलिः—बलि महाराज ने; मुक्तः—इस प्रकार बन्धन से मुक्त; सह असुरैः—अपने असुर संगियों के साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार कहने के पश्चात् बलि महाराज ने सर्वप्रथम भगवान् हरि को और फिर ब्रह्माजी तथा शिवजी को नमस्कार किया। इस तरह वे नागपाश

( वरुणपाश ) से मुक्त कर दिये गये और पूर्णतया सन्तुष्ट होकर सुतललोक में प्रविष्ट हुए ।

एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।  
पूरयित्वादितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; इन्द्राय—इन्द्र को; भगवान्—भगवान् ने; प्रत्यानीय—वापस देकर; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग लोकों में अपनी श्रेष्ठता; पूरयित्वा—पूरा करके; अदितेः—अदिति की; कामम्—इच्छा; अशासत्—शासन किया; सकलम्—पूर्ण; जगत्—ब्रह्माण्ड ।

इस प्रकार इन्द्र को स्वर्गलोकों का स्वामित्व प्रदान करके तथा देवमाता अदिति की इच्छा पूरी करके भगवान् ब्रह्माण्ड के कार्यकलापों पर शासन करने लगे ।

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ।  
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

लब्ध-प्रसादम्—जिसे भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था; निर्मुक्तम्—बन्धन से छोड़ा गया; पौत्रम्—अपने नाती को; वंश-धरम्—वंशज; बलिम्—बलि महाराज को; निशाम्य—सुनकर; भक्ति-प्रवणः—भक्ति-भाव से पूरित; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज ने; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा ।

जब प्रह्लाद महाराज ने सुना कि उनका पौत्र तथा वंशज बलि महाराज किस तरह बन्धन से मुक्त किया गया है और उसे भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, तो वे अत्यधिक प्रेमा-भक्ति के स्वर में इस प्रकार बोले ।

श्रीप्रह्लाद उवाच  
नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं  
न श्रीर्न शर्वः किमुतापरेऽन्ये ।  
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो  
विश्वाभिवन्द्यैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-प्रह्लादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने कहा; न—नहीं; इमम्—यह; विरिञ्चः—ब्रह्माजी भी; लभते—प्राप्त कर सकता है; प्रसादम्—आशीर्वाद; न—न तो; श्रीः—लक्ष्मीजी; न—न तो; शर्वः—शिवजी; किम् उत—क्या कहा जाये; अपरे अन्ये—अन्य; यत्—जो आशीर्वाद; नः—हम; असुराणाम्—असुरों का; असि—हो; दुर्ग-पालः—पालक; विश्व-अभिवन्द्यैः—समस्त ब्रह्माण्ड में पूजित ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे महापुरुषों के द्वारा; अभिवन्दिता-अङ्घ्रिः—जिनके चरणकमल पूज्य हैं ।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे भगवान्! आप विश्वपूज्य हैं, यहाँ तक कि ब्रह्माजी तथा शिवजी भी आपके चरणकमलों की पूजा करते हैं । इतने महान् होते हुए भी आपने कृपापूर्वक हम असुरों

की रक्षा करने का वचन दिया है। मेरा विचार है कि ब्रह्माजी, शिवजी या लक्ष्मीजी को भी कभी ऐसी दया प्राप्त नहीं हुई; तो अन्य देवताओं या सामान्य व्यक्तियों की बात ही क्या है!

तात्पर्य : दुर्गपाल शब्द महत्त्वपूर्ण है। दुर्ग का अर्थ है “जो सरलता से नहीं जाता।” सामान्यतः दुर्ग का अर्थ किला होता है, जिसमें आसानी से प्रवेश नहीं किया जा सकता। दुर्ग का अन्य अर्थ “कठिनाई” है। चूँकि भगवान् ने बलि महाराज तथा उनके संगियों की सभी संकटों से रक्षा करने का वचन दिया इसीलिए उन्हें यहाँ दुर्गपाल कहा गया है—अर्थात् वे भगवान् जो समस्त कष्टप्रद दशाओं में संरक्षण देते हैं।

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन

ब्रह्मादयः शरणदाशुनुवते विभूतीः ।

कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते

दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद-पद्म—चरणकमल के; मकरन्द—मधु का; निषेवणेन—सेवा करने की मिठास को चखकर; ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्माजी जैसे महापुरुष; शरण-द—हे सबके परम आश्रय भगवान्; अशुनुवते—भोग करते हैं; विभूतीः—आपके द्वारा दिये गये आशीर्वाद; कस्मात्—कैसे; वयम्—हम सब; कु-सृतयः—सारे धूर्त तथा चोर; खल-योनयः—ईर्ष्या रखने वाले वंश (असुर वंश) में उत्पन्न; ते—वे असुर; दाक्षिण्य-दृष्टि-पदवीम्—दयादृष्टि से प्राप्त पद; भवतः—आपका; प्रणीताः—प्राप्त किया है।

हे सबके परम आश्रय! ब्रह्माजी जैसे महापुरुष आपके चरणकमलों की सेवा रूपी मधु का स्वाद चखने मात्र से सिद्धि को भोग पाते हैं। किन्तु हम लोगों पर, जो सारे के सारे धूर्त हैं और असुरों के ईर्ष्यालु वंश में जन्मे हैं आपकी कृपा किस प्रकार हो सकी? यह तो केवल इसीलिए सम्भव हो सका है क्योंकि आपकी कृपा अहैतुकी है।

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-

लीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ।

सर्वात्मनः समदृशोऽविषमः स्वभावो

भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

चित्रम्—अत्यन्त अद्भुत; तव ईहितम्—तुम्हारे सारे कार्यकलाप; अहो—ओह; अमित—असीम; योगमाया—आपकी आध्यात्मिक शक्ति की; लीला—लीला द्वारा; विसृष्ट-भुवनस्य—आपका, जिन्होंने समस्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि की है; विशारदस्य—सभी प्रकार से पटु आपका; सर्व-आत्मनः—सर्वव्यापी भगवान् का; सम-दृशः—सबके प्रति समभाव रखने

वाला; अविषम:—बिना भेदभाव के; स्वभाव:—यही आपका लक्षण है; भक्त-प्रिय:—ऐसी परिस्थिति में आप भक्तों के अत्यन्त अनुकूल बन जाते हो; यत्—क्योंकि; असि—हो; कल्पतरु-स्वभाव:—कल्पवृक्ष के गुण वाला।

हे प्रभु! आपकी लीलाएँ आपकी अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति द्वारा विचित्र ढंग से सम्पन्न होती हैं और अपने विकृत प्रतिबिम्ब अर्थात् भौतिक शक्ति ( माया ) द्वारा आपने सारे ब्रह्माण्डों की सृष्टि की है। आप सभी जीवों के परमात्मा के रूप में हर बात जानते हैं; अतएव निश्चय ही, आप सब पर समान दृष्टि रखते हैं। तो भी आप अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं। यह पक्षपात नहीं है क्योंकि आपका यह गुण उस कल्पवृक्ष की तरह है, जो इच्छानुसार कोई भी वस्तु प्रदान करता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.२९) में भगवान् कहते हैं—

*समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।*

*ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥*

“न मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न किसी का पक्ष लेता हूँ। मैं सब पर समभाव रखता हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।” भगवान् निस्सन्देह सभी जीवों पर समदर्शी हैं, किन्तु भक्त जो भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया समर्पित हो जाता है अभक्त से भिन्न होता है। दूसरे शब्दों में, भगवान् से समान वर पाने के लिए हर व्यक्ति उनके चरणकमलों में शरण ले सकता है, किन्तु अभक्त ऐसा नहीं करते; अतएव उन्हें माया द्वारा उत्पन्न परिणाम भोगने पड़ते हैं। इसे हम एक साधारण उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। कोई राजा या सरकार समस्त नागरिकों पर समभाव रखती है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति इस योग्य है कि उसे सरकार से विशेष कृपा प्राप्त हो और यदि उसे कोई ऐसी कृपा प्रदान की जाती है, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि सरकार पक्षपात करती है। जो यह जानता है कि अपने अधिकारी की कृपा कैसे प्राप्त की जाती है, वह ऐसी कृपा प्राप्त कर सकता है, किन्तु जो ऐसा नहीं जानता वह इसकी परवाह नहीं करता और उसे नहीं पाता। मनुष्यों की दो कोटियाँ होती हैं—असुर तथा सुर (देवता)। देवताओं को परमेश्वर के पद का पूर्ण ज्ञान रहता है; अतएव वे उनके आज्ञाकारी होते हैं, किन्तु असुरगण भगवान् की श्रेष्ठता जानते हुए भी उनकी सत्ता का जानबूझ कर उल्लंघन करते हैं। अतएव भगवान् जीवों की मनोवृत्ति के अनुसार भेदभाव बरतते हैं अन्यथा वे समदर्शी हैं। कल्पवृक्ष की तरह भगवान् उसकी सारी इच्छाएँ पूरी

करते हैं, जो उनकी शरण ग्रहण करता है, किन्तु जो शरण नहीं ग्रहण करता वह शरणागत से पृथक् होता है। जो भगवान् के चरणकमलों की शरण लेता है उस पर भगवान् कृपा करते हैं चाहे वह असुर हो या देवता।

श्रीभगवानुवाच

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ।

मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; वत्स—हे प्रिय पुत्र; प्रह्लाद—हे प्रह्लाद महाराज; भद्रम् ते—तुम्हारा कल्याण हो; प्रयाहि—जाओ; सुतल-आलयम्—सुतल नामक स्थान को; मोदमानः—प्रसन्न मन से; स्व-पौत्रेण—अपने पौत्र ( बलि महाराज ) सहित; ज्ञातीनाम्—कुटुम्बियों तथा मित्रों का; सुखम्—सुख; आवह—भोग करो।

भगवान् ने कहा : हे मेरे प्रिय पुत्र प्रह्लाद! तुम्हारा मंगल हो। अभी तुम सुतल नामक स्थान को जाओ और वहाँ अपने पौत्र एवं अन्य कुटुम्बियों तथा मित्रों सहित सुख भोगो।

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ।

मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—निरन्तर; द्रष्टा—देखने वाला; असि—हो; माम्—मुझको; तत्र—वहाँ ( सुतललोक में ); गदा-पाणिम्—हाथ में गदा लिए; अवस्थितम्—वहाँ स्थित; मत्-दर्शन—उस रूप में मेरा दर्शन करके; महा-आह्लाद—दिव्य आनन्द से; ध्वस्त—विनष्ट; कर्म-निबन्धनः—सकाम कर्मों का बन्धन।

भगवान् ने प्रह्लाद महाराज को आश्वासन दिया कि तुम वहाँ पर हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए मेरे नित्य रूप का दर्शन कर सकोगे। वहाँ मेरे निरन्तर प्रत्यक्ष दर्शन से दिव्य आनन्द प्राप्त करके तुम और अधिक कर्म-बन्धन में नहीं पड़ोगे।

तात्पर्य : कर्मबन्धन में जन्म तथा मृत्यु का पिष्टपेषण होता है। मनुष्य इस तरह सकाम कर्म करता है कि वह अपने अगले जीवन के लिए एक दूसरा शरीर बना लेता है। जब तक वह सकाम कर्म में लिप्त रहता है उसे दूसरा भौतिक शरीर स्वीकार करना पड़ता है। भौतिक शरीरों की यह बारम्बार स्वीकृति संसार बन्धन कहलाती है। इसे रोकने के लिए भक्त को सलाह दी जाती है कि वह निरन्तर भगवान् का दर्शन करे। इसलिए कनिष्ठ अधिकारी या नवदीक्षित भक्त को प्रतिदिन मंदिर जाने और नियमित रूप से भगवान् के स्वरूप का दर्शन करने की सलाह दी जाती है। इस प्रकार नवदीक्षित भक्त कर्मबन्धन से छूट सकता है।

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह ।

बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्धन्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥

परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ।

प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आज्ञाम्—आदेश; भगवतः—भगवान् का; राजन्—हे राजा ( परीक्षित महाराज ); प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; बलिना सह—बलि महाराज के साथ-साथ; बाढम्—महोदय, आप जो कहते हैं ठीक है; इति—इस प्रकार; अमल-प्रज्ञः—विमल बुद्धि वाले प्रह्लाद महाराज; मूर्ध्न—अपने सिर पर; आधाय—रखकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े; परिक्रम्य—प्रदक्षिणा करके; आदि-पुरुषम्—परम आदि पुरुष भगवान् को; सर्व-असुर-चमूपतिः—असुरों के समस्त नायकों के स्वामी; प्रणतः—नमस्कार करके; तत्-अनुज्ञातः—उनसे ( वामन से ) अनुमति पाकर; प्रविवेश—प्रवेश किया; महा-बिलम्—सुतल नामक लोक में।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! समस्त असुर-पतियों के स्वामी प्रह्लाद महाराज ने बलि महाराज समेत हाथ जोड़कर भगवान् के आदेश को सिर पर चढ़ाया। भगवान् से हाँ कह कर, उनकी प्रदक्षिणा करके तथा उन्हें सादर प्रणाम करके उन्होंने सुतल नामक अधोलोक में प्रवेश किया।

अथाहोशनसं राजन्हरिर्नारायणोऽन्तिके ।

आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आह—कहा; उशनसम्—शुक्राचार्य से; राजन्—हे राजा; हरिः—भगवान् ने; नारायणः—स्वामी; अन्तिके—निकट ही; आसीनम्—बैठे हुए; ऋत्विजाम् मध्ये—सभी पुरोहितों की टोली में; सदसि—सभा में; ब्रह्म-वादिनाम्—वैदिक नियमों के पालनकर्ताओं की।

तत्पश्चात् भगवान् हरि या नारायण ने शुक्राचार्य को सम्बोधित किया जो पुरोहितों ( ब्रह्म, होता, उद्गाता तथा अध्वर्यु ) के निकट ही सभा में बैठे थे। हे महाराज परीक्षित! ये सभी पुरोहित ब्रह्मवादी थे अर्थात् यज्ञ सम्पन्न करने के लिए वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले थे।

ब्रह्मन्सन्तनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ।

यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; सन्तनु—कृपया वर्णन करें; शिष्यस्य—अपने शिष्य का; कर्म-छिद्रम्—सकाम कर्म के दोष; वितन्वतः—यज्ञकर्ता के; यत् तत्—जो; कर्मसु—कार्यों में; वैषम्यम्—त्रुटि; ब्रह्म-दृष्टम्—ब्राह्मणों की दृष्टि में; समम्—सम; भवेत्—हो जाती है।



हे ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य! आप यज्ञ में लगे अपने शिष्य बलि महाराज का अपराध या कमी बतलाइये। इस अपराध का निराकरण योग्य ब्राह्मणों की उपस्थिति में निर्णय लेने पर हो जाएगा।

तात्पर्य : जब बलि महाराज तथा प्रह्लाद महाराज सुतललोक के लिए रवाना हो गये तो भगवान् विष्णु ने शुक्राचार्य से पूछा कि बलि महाराज में वह कौन सा अपराध था जिसके कारण उन्होंने उन्हें शाप दे दिया था। यह तर्क किया जा सकता है कि जब बलि महाराज उस स्थान से चले गये थे तो उनके दोषों का निर्णय कैसे हो सकता था? इसके उत्तर में भगवान् विष्णु ने शुक्राचार्य को बताया कि वहाँ बलि महाराज की उपस्थिति आवश्यक नहीं थी क्योंकि ब्राह्मणों की उपस्थिति में निर्णय हो जाने पर उनके सारे दोषों एवं कमियों का निराकरण हो जायेगा। जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया है, बलि महाराज का कोई दोष न था; शुक्राचार्य ने वृथा ही उन्हें शाप दे दिया था। फिर भी बलि महाराज के लिए यह अच्छा ही हुआ। शुक्राचार्य के शाप से उनकी सारी सम्पत्ति जाती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि भगवान् ने उनकी भक्ति में प्रगाढ़ श्रद्धा के कारण उन पर कृपा की। निस्सन्देह, भक्त को सकाम कर्मों में लगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसा कि शास्त्र का कथन है—*सर्वार्हणम् अच्युतेज्या* ( *भागवत* ४.३१.१४)। अच्युत भगवान् की पूजा करके हर एक को प्रसन्न किया जा सकता है। चूँकि बलि महाराज ने भगवान् को प्रसन्न कर लिया था अतएव उनके यज्ञ करने में कोई कमी नहीं थी।

श्रीशुक्र उवाच

कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।  
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक्रः उवाच—श्री शुक्राचार्य ने कहा; कुतः—कहाँ है; तत्—उसका ( बलि का ); कर्म-वैषम्यम्—सकाम कर्म करने में त्रुटि; यस्य—जिसका ( बलि का ); कर्म-ईश्वरः—सारे सकाम कर्मों के स्वामी; भवान्—आप; यज्ञ-ईशः—सारे यज्ञों के भोक्ता; यज्ञ-पुरुषः—आप ही वे पुरुष हैं जिनकी प्रसन्नता के लिए सारे यज्ञ किये जाते हैं; सर्व-भावेन—सभी प्रकार से; पूजितः—पूजित होकर।

शुक्राचार्य ने कहा : हे प्रभु! आप यज्ञ के भोक्ता हैं और सभी यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले हैं। आप यज्ञपुरुष हैं अर्थात् आप ही वे पुरुष हैं जिनके लिए सारे यज्ञ किये जाते हैं। यदि किसी ने आपको पूरी तरह संतुष्ट कर लिया तो फिर उसके यज्ञ करने में त्रुटियों अथवा दोषों के होने

का अवसर ही कहाँ रह जाता है?

तात्पर्य : भगवद्गीता (५.२९) में भगवान् कहते हैं— भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्—परम स्वामी भगवान् ही वे असली पुरुष हैं, जिन्हें यज्ञों के द्वारा संतुष्ट करना होता है। विष्णु पुराण (३.८.९) में कहा गया है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।

विष्णुराराध्यते पन्था नन्यत् ततोषकारणम् ॥

समस्त वैदिक कर्मकाण्डीय यज्ञ यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु को तुष्ट करने के उद्देश्य से सम्पन्न किये जाते हैं। समाज के आश्रम—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास— भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए है। इस वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार कर्म करने को वर्णाश्रमाचरण कहते हैं। श्रीमद्भागवत (१.२.१३) में सूत गोस्वामी कहते हैं—

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।

स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥

“हे द्विजश्रेष्ठ! अतएव यह निष्कर्ष निकला जाता है कि सर्वोच्च सिद्धि की प्राप्ति भगवान् की तुष्टि है, जो वर्णाश्रम धर्म के विभाजन के अनुसार अपने नियत कर्तव्यों को करने से प्राप्त की जा सकती है।” हर वस्तु भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त है। अतएव बलि महाराज में कोई दोष न था क्योंकि उन्होंने भगवान् को प्रसन्न कर लिया था और शुक्राचार्य ने स्वीकार किया कि उनको शाप देना ठीक नहीं था।

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।

सर्वं करोति निश्छिद्रमनुसङ्कीर्तनं तव ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

मन्त्रतः—वैदिक मंत्रों का गलत उच्चारण करने से; तन्त्रतः—कर्मकाण्ड पालन के लिए अधूरे ज्ञान से; छिद्रम्—दोष; देश—देश; काल—तथा समय; अर्ह—तथा पात्र; वस्तुतः—तथा सामग्री; सर्वम्—ये सब; करोति—बनाता है; निश्छिद्रम्—त्रुटिहीन; अनुसङ्कीर्तनम्—पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन; तव—आपका।

मंत्रों के उच्चारण तथा कर्मकाण्ड के पालन में त्रुटियाँ हो सकती हैं। देश, काल, व्यक्ति तथा सामग्री के विषय में भी कमियाँ रह सकती हैं। किन्तु भगवन्! यदि आपके पवित्र नाम का कीर्तन किया जाए तो हर वस्तु दोषरहित बन जाती है।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“इस कलह तथा दिखावे के युग में उद्धार का केवल एक ही साधन है और वह है भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन। इसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है। अन्य कोई रास्ता नहीं है। अन्य कोई रास्ता नहीं है।” ( *बृहन्नारदीय पुराण ३८.१२६* )। इस कलियुग में वैदिक कर्मकाण्डों या यज्ञों को पूरी तरह से सम्पन्न कर सकना अत्यन्त दुष्कर है। शायद ही कोई वैदिक मंत्रों का ठीक से उच्चारण कर सकता हो या वैदिक अनुष्ठानों के लिए सामग्री का संग्रह कर सकता हो। इसलिए इस युग के लिए जिस यज्ञ की संस्तुति की गई है, वह है सङ्कीर्तन—अर्थात् भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन। यज्ञैः सङ्कीर्तनः प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ( *भागवत ११.५.२९* )। जो लोग बुद्धिमान् हैं और जिनके पास अच्छी दिमागी शक्ति है, वे वैदिक यज्ञों को सम्पन्न करने में समय न गँवाकर भगवान् के पवित्र नामका कीर्तन करें और इस तरह यज्ञ को अच्छी तरह पूरा करें। मैंने देखा है कि अनेक धार्मिक नेताओं को यज्ञ करने एवं अपूर्ण यज्ञ की सम्पन्नता में लाखों रुपया खर्च करने की लत है। यह उन लोगों के लिए शिक्षा है, जो ऐसे अपूर्ण यज्ञ व्यर्थ ही सम्पन्न करते हैं। हमें श्री चैतन्य महाप्रभु की सलाह ग्रहण करनी चाहिए ( *यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः* )। यद्यपि शुक्राचार्य कट्टर कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे, किन्तु उन्होंने भी स्वीकार किया है— *निश्छिद्रम् अनुसङ्कीर्तनं तव*—हे भगवान्! आपके पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन सब कुछ पूर्ण कर देता है। कलियुग में वैदिक कर्मकाण्डों को पहले की तरह पूरी तरह सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए श्रील जीव गोस्वामी ने संस्तुति की है कि यद्यपि हर प्रकार का आध्यात्मिक कर्म करते समय सभी सिद्धान्तों के पालन में पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए, विशेषतया दैव पूजा में, फिर भी कुछ न कुछ त्रुटि रह सकती है और मनुष्य को चाहिए कि वह इस कमी को पूरा करने के लिए भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करें। इसलिए हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सभी कर्मों में हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन पर विशेष बल देते हैं।

तथापि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् ।

एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञानुपालनम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तथापि—यद्यपि बलि महाराज का कोई दोष न था, तो भी; वदतः—आपके आदेश के कारण; भूमन्—हे परम; करिष्यामि—मैं करूँगा; अनुशासनम्—क्योंकि यह आपका आदेश है; एतत्—यह; श्रेयः—शुभ; परम्—परम; पुंसाम्—सभी मनुष्यों का; यत्—क्योंकि; तव आज्ञा-अनुपालनम्—आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए।

हे भगवान् विष्णु! तो भी मैं आपके आदेशानुसार आपकी आज्ञा का पालन करूँगा क्योंकि

आपके आदेश का पालन करना परम शुभ है और हर एक का सर्वोपरि कर्तव्य है।

श्रीशुक उवाच

प्रतिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ।

यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; प्रतिनन्द्य—नमस्कार करके; हरेः—भगवान् की; आज्ञाम्—आज्ञा को; उशनाः—शुक्राचार्य; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; इति—इस प्रकार; यज्ञ-छिद्रम्—यज्ञ करने में त्रुटियाँ; समाधत्त—पूरा करने का निश्चय किया; बलेः—बलि महाराज का; विप्र-ऋषिभिः—योग्यब्राह्मणों के; सह—साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार परम शक्तिशाली शुक्राचार्य ने आदरपूर्वक

भगवान् की आज्ञा स्वीकार कर ली। उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ बलि महाराज द्वारा सम्पन्न यज्ञ की त्रुटियों को पूरा करना शुरू कर दिया।

एवं बलेर्महीं राजन्भिक्षित्वा वामनो हरिः ।

ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; बलेः—बलि महाराज से; महीम्—भूमि को; राजन्—हे राजा परीक्षित; भिक्षित्वा—माँगकर; वामनः—भगवान् वामनदेव; हरिः—भगवान् ने; ददौ—दे दिया; भ्रात्रे—अपने भाई को; महा-इन्द्राय—स्वर्ग के राजा इन्द्र को; त्रिदिवम्—देवलोक; यत्—जो; परैः—अन्यों द्वारा; हृतम्—छीन लिया गया था।

हे राजा परीक्षित! इस प्रकार भिक्षा के रूप में बलि महाराज की सारी भूमि लेकर भगवान्

वामनदेव ने उसे अपने भाई इन्द्र को दे दिया जिसे इन्द्र के शत्रु ने ले लिया था।

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ।

दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारैः भवेन च ॥ २० ॥

कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ।

लोकानां लोकपालानामकरोद्दामनं पतिम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्रजापति-पति:—सारे प्रजापतियों के स्वामी; ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; देव—देवताओं सहित; ऋषि—सन्त पुरुषों के साथ; पितृ—पितृलोक के निवासियों के साथ; भूमिपै:—मनुओं के साथ; दक्ष—दक्ष; भृगु—भृगु मुनि; अङ्गिर:—अंगिरा मुनि के साथ; मुख्यै:—विभिन्न लोकों के प्रधानों के साथ; कुमारेण—कार्तिकेय के साथ; भवेन—शिवजी के साथ; च—भी; कश्यपस्य—कश्यप मुनि की; अदिते:—अदिति की; प्रीत्यै—प्रसन्नता के लिए; सर्व-भूत-भवाय—समस्त जीवों के मंगल हेतु; च—भी; लोकानाम्—सारे लोकों के; लोक-पालानाम्—समस्त लोकों के प्रधान पुरुषों का; अकरोत्—बना दिया; वामनम्—वामन को; पतिम्—परम नेता ।

ब्रह्माजी ने ( जो राजा दक्ष तथा अन्य सभी प्रजापतियों के स्वामी हैं ) सारे देवताओं, महान् सन्तों, पितृलोक के वासियों, मनुओं, मुनियों और दक्ष, भृगु तथा अंगिरा जैसे नायकों एवं कार्तिकेय तथा शिवजी सहित भगवान् वामनदेव को हर एक के संरक्षक के रूप में ग्रहण किया । यह सब उन्होंने कश्यप मुनि तथा उनकी पत्नी अदिति की प्रसन्नता के लिए एवं ब्रह्माण्ड के समस्त वासियों तथा उनके विभिन्न नायकों के कल्याण के लिए किया ।

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ।

मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥

उपेन्द्रं कल्पयां चक्रे पतिं सर्वविभूतये ।

तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

वेदानाम्—समस्त वेदों की ( रक्षा के लिए ); सर्व-देवानाम्—सारे देवताओं का; धर्मस्य—सारे धर्मों का; यशसः—सारे यश का; श्रियः—समस्त ऐश्वर्यों का; मङ्गलानाम्—सारे कल्याण का; व्रतानाम् च—तथा सारे व्रतों का; कल्पम्—अत्यन्त पटु; स्वर्ग-अपवर्गयोः—स्वर्ग जाने या भवबन्धन से मुक्ति के लिए; उपेन्द्रम्—भगवान् वामनदेव को; कल्पयाम् चक्रे—यह योजना बनाई; पतिम्—स्वामी को; सर्व-विभूतये—सभी कार्यों के लिए; तदा—उस समय; सर्वाणि—सभी; भूतानि—जीवों को; भृशम्—अत्यधिक; मुमुदिरे—प्रसन्न हो गये; नृप—हे राजा ।

हे राजा परीक्षित! इन्द्र को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का राजा माना जाता था, किन्तु ब्रह्माजी समेत अन्य देवता उपेन्द्र अर्थात् वामनदेव को वेदों, धर्म, यश, ऐश्वर्य, मंगल, व्रत, स्वर्गलोक तक उन्नति तथा मुक्ति के रक्षक के रूप में चाहते थे। इसलिए उन्होंने उपेन्द्र अर्थात् भगवान् वामनदेव, को सबका परम स्वामी स्वीकार कर लिया। इस निर्णय से सारे जीव अत्यधिक प्रसन्न हो गए।

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।

लोकपालैर्दिवं निन्द्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तु—लेकिन; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; पुरस्कृत्य—आगे रखकर; देव-यानेन—देवताओं द्वारा प्रयुक्त वायुयान द्वारा; वामनम्—वामनदेव को; लोक-पालैः—अन्य सभी लोकों के प्रधानों द्वारा; दिवम्—स्वर्ग को; निन्द्ये—ले आया; ब्रह्मणा—ब्रह्माजी द्वारा; च—भी; अनुमोदितः—अनुमति प्राप्त ।

तत्पश्चात् स्वर्गलोकों के सारे प्रधानों सहित स्वर्ग के राजा, इन्द्र, वामनदेव को अपने समक्ष

करके ब्रह्मा की अनुमति से, उन्हें दैवी वायुयान में बैठा कर स्वर्गलोक ले आये।

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ।

श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

प्राप्य—प्राप्त करके; त्रि-भुवनम्—तीनों लोक; च—भी; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा ने; उपेन्द्र-भुज-पालितः—उपेन्द्र अर्थात् वामनदेव के बाहुबल से रक्षित होकर; श्रिया—ऐश्वर्य के द्वारा; परमया—परम; जुष्टः—सेवा किया गया; मुमुदे—भोग किया; गत-साध्वसः—असुरों के भय से रहित।

इस प्रकार भगवान् वामनदेव की बाहुओं से रक्षित होकर स्वर्ग के राजा इन्द्र ने तीनों लोकों का अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया और निर्भय होकर तथा पूर्णतया सन्तुष्ट होकर वे अपने परम ऐश्वर्यशाली पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिए गए

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ।

पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥

सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमद्भुतम् ।

धिष्ययानि स्वानि ते जग्मुर्दिति च शशंसिरे ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; शर्वः—शिवजी; कुमारः च—तथा कार्तिकेय; भृगु-आद्याः—सप्तर्षियों में से एक भृगुमुनि आदि; मुनयः—मुनिगण; नृप—हे राजा; पितरः—पितृलोक के निवासी; सर्व-भूतानि—अन्य जीव; सिद्धाः—सिद्धलोक के निवासी; वैमानिकाः च—वायुयान द्वारा आकाश में कहीं भी विचरण कर सकने वाले मनुष्य; ये—जो लोग; सुमहत्—अत्यधिक प्रशंसनीय; कर्म—कार्यकलाप; तत्—वे सब ( कर्म ); विष्णोः—भगवान् विष्णु द्वारा किये गये; गायन्तः—महिमागायन करते हुए; परम् अद्भुतम्—असामान्य तथा अद्भुत; धिष्ययानि—लोकों को; स्वानि—अपने-अपने; ते—वे सब; जग्मुः—चले गये; अदितिम् च—अदिति को भी; शशंसिरे—भगवान् के इन कार्यकलापों की प्रशंसा की।

ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, महर्षि भृगु, अन्य सन्त, पितृलोक के वासी तथा सिद्धलोक के निवासी एवं वायुयान द्वारा बाह्य आकाश की यात्रा करने वाले जीवों के समेत वहाँ पर उपस्थित सारे मनुष्यों ने भगवान् वामनदेव के असामान्य कार्यों की महिमा का गायन किया। हे राजा! भगवान् का कीर्तन एवं उनकी महिमा का गायन करते हुए वे सभी अपने-अपने स्वर्ग लोकों को लौट गये। उन्होंने अदिति के पद की भी प्रशंसा की।

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन ।

उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

सर्वम्—सब; एतत्—ये घटनाएँ; मया—मेरे द्वारा; आख्यातम्—वर्णित की गई हैं; भवतः—आपकी; कुल-नन्दन—अपने वंश के आनन्द, हे महाराज परीक्षित; उरुक्रमस्य—भगवान् के; चरितम्—कार्यकलापों को; श्रोतृणाम्—श्रोताओं का; अध-मोचनम्—पापों के फलों को नष्ट करने।

हे महाराज परीक्षित! हे अपने वंश के आनन्द! मैंने अब तुमसे भगवान् वामनदेव के अद्भुत कार्यों के विषय में सारा वर्णन कर दिया है। जो लोग इसे सुनते हैं, वे निश्चित रूप से पापकर्मों के सभी फलों से मुक्त हो जाते हैं।

पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो

यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ।

किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य

इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

पारम्—माप; महिम्नः—यश की; उरुविक्रमतः—अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् का; गृणानः—गिन सकता है; यः—जो व्यक्ति; पार्थिवानि—सम्पूर्ण पृथ्वी लोक का; विममे—गिन सकता है; सः—वह; रजांसि—कण; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; किम्—क्या; जायमानः—भविष्य में जन्म लेकर; उत—या तो; जातः—उत्पन्न; उपैति—कर सकता है; मर्त्यः—मरणशील व्यक्ति; इति—इस प्रकार; आह—कहा; मन्त्र-दृक्—जो वैदिक मंत्रों को पहले से ही देख सकते थे; ऋषिः—वसिष्ठ मुनि; पुरुषस्य—परम पुरुष का; यस्य—जिसका।

मरणशील व्यक्ति भगवान् त्रिविक्रम अर्थात् विष्णु की महिमा की थाह नहीं पा सकता जिस प्रकार कि वह सम्पूर्ण पृथ्वी लोक के कणों की संख्या नहीं जान सकता। कोई भी व्यक्ति जिसने जन्म धारण किया है या जो जन्म लेने वाला है ऐसा नहीं कर सकता। इसका गायन महर्षि वसिष्ठ ने किया है।

तात्पर्य : वसिष्ठ मुनि ने भगवान् विष्णु के विषय में एक मंत्र दिया है—*न ते विष्णोर्जायमानो न जातो महिम्नः पारम् अनन्तम् आप।* कोई भी व्यक्ति भगवान् विष्णु के असामान्य महिमायुक्त कार्यकलापों की कल्पना नहीं कर सकता। दुर्भाग्यवश तथाकथित विज्ञानी जो किसी भी क्षण काल के ग्रास बन सकते हैं, चिन्तन द्वारा ब्रह्माण्ड की अद्भुत सृष्टि को समझने का प्रयास करते हैं। यह मूर्खतापूर्ण प्रयास है। बहुत काल पूर्व वसिष्ठ मुनि ने कहा था कि ऐसा कोई नहीं है, जो भूतकाल में भगवान् की महिमाओं को माप सका हो, न ही कोई भविष्य में ऐसा कर सकेगा। मनुष्य को भगवान् की सृष्टि के यशस्वी कार्यों को ही देखकर सन्तुष्ट मात्र रहना चाहिए। इसीलिए भगवान् *भगवद्गीता* (१०.४२) में कहते हैं—*विष्टभ्याहम् इदं कृत्सनम् एकांशेन स्थितो जगत्*—मैं अपने एकाकी अंश से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता हूँ और इसका पालन करता हूँ। भौतिक जगत में असंख्य ब्रह्माण्ड

हैं, उनमें से प्रत्येक में असंख्य लोक हैं, जो भगवान् की भौतिक शक्ति के प्रतिफल माने जाते हैं। फिर भी यह ईश्वर की सृष्टि का चतुर्थांश ही होता है। शेष तीन चौथाई सृष्टि आध्यात्मिक जगत है। तथाकथित विज्ञानी एक ही ब्रह्माण्ड के अनन्त लोकों में से चन्द्रमा तथा मंगल तक को नहीं समझ पाते, किन्तु वे भगवान् की सृष्टि तथा उनकी असाधारण शक्ति की अवहेलना करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोगों को सनकी कहा गया है। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म ( भागवत ५.५.४ )*। ऐसे सनकी लोग भगवान् उरुक्रम के यशस्वी कार्यों को नकारने में व्यर्थ ही समय, शक्ति तथा धन का अपव्यय करते हैं।

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।

अवतारानुचरितं शृण्वन्याति परां गतिम् ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो कोई; इदम्—यह; देव-देवस्य—भगवान् का, जो देवताओं द्वारा पूज्य हैं; हरेः—भगवान् कृष्ण या हरि का; अद्भुत-कर्मणः—जिनके कार्यकलाप अद्भुत हैं; अवतार-अनुचरितम्—उनके विभिन्न अवतारों में सम्पन्न कार्यकलाप; शृण्वन्—सुनते हुए; याति—जाता है; पराम् गतिम्—परम सिद्धि को, भगवद्धाम को।

यदि कोई भगवान् के विभिन्न अवतारों के असामान्य कार्यकलापों का श्रवण करता है, तो वह निश्चित रूप से स्वर्गलोक को भेजा जाता है या भगवान् के धाम को वापस जाता है।

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ।

यत्र यत्रानुकीर्त्येत् तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

क्रियमाणे—सम्पन्न हो जाने पर; कर्मणि—अनुष्ठान का; इदम्—वामनदेव के गुणों का यह विवरण; दैवे—देवताओं को प्रसन्न करने के लिए; पित्र्ये—या पूर्वजों को प्रसन्न करने यथा श्राद्ध उत्सव में; अथ—या तो; मानुषे—मानव समाज के आनन्द के लिए यथा विवाहों में; यत्र—जहाँ भी; यत्र—जब भी; अनुकीर्त्येत्—वर्णन किया जाता है; तत्—वह; तेषाम्—उनके लिए; सुकृतम्—शुभ; विदुः—हर एक को समझना चाहिए।

जब भी कर्मकाण्ड के दौरान, चाहे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए या पितृलोक के पितरों को प्रसन्न करने के लिए कोई उत्सव किया जाए, या विवाह जैसा सामाजिक कृत्य मनाने के लिए वामनदेव के कार्यकलापों का वर्णन हो, तो उस उत्सव को परम मंगल-मय समझना चाहिए।

तात्पर्य : उत्सव तीन प्रकार के होते हैं—भगवान् या देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उत्सव, सामाजिक उत्सव यथा विवाह तथा जन्मदिन एवं पितरों को प्रसन्न करने वाले उत्सव यथा श्राद्ध। इन सभी उत्सवों में विविध कार्यों पर प्रचुर धन खर्च किया जाता है, किन्तु यहाँ पर यह सुझाव दिया गया



है कि यदि इनके साथ-साथ वामनदेव के अद्भुत कार्यों का पाठ होता रहे तो निश्चित रूप से वह उत्सव सफल तथा त्रुटिरहित होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत “देवताओं को स्वर्गलोकों की पुनर्प्राप्ति ” नामक तेईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।